भारत की वीर नारियाँ



ज्ञानदीप-प्रकाशन, जबलपुर

भाषा की सहायक पाठ्य-पुस्तक

भारत की वीर नारियाँ

कक्षा चौथी के लिये

—:o:—

संकलनकर्त्ता—
कुमारी कृष्णा कृपा एम. ए., बी. टी.
शिक्षा अधीक्षिका
नगर निगम, जबलपुर।



प्रकाशक—
ज्ञानदीप प्रकाशन
जबलपुर।

मूल्य ।=)

प्रकाशक—
ज्ञानदीप प्रकाशन
संबलपुर

द्वितीयावृत्ति १९५७

आकार—क्राउन आक्टेव; कागज २४ पौंड २० × ३०
आवरण पृष्ठ—४० पौंड आर्ट पेपर। जिल्द तार से बँधी;
छापा १२ प्वाइंट

मुद्रक—
श्री त्रिभुवननाथ धीर
(राजा) रामकुमार-प्रेस,
लखनऊ.

विषय-सूची

पाठ १

देवी अहल्याबाई

देवी अहल्याबाई का जन्म मालव प्रान्त के एक छोटे से देहात में हुआ था। माणकोजी शिन्दे, एक किसान 'पाटील' की वह लड़की थी। बचपन से ही अहल्याबाई में भावी बड़प्पन के चिह्न दिखाई देते थे। उसको देखने से ही उसकी अपूर्व तेजस्विता का पता चलता था। ज्योतिषियों ने बतलाया कि यह लड़की जरूर रानी बनेगी, परन्तु गरीब माता-पिता इस बात को असम्भव मानते थे।

एक बार मल्हारराव होलकर ने अहल्याबाई को देखा। वे बहुत प्रभावित हुए। उन्होंने पूछ-ताछ की। अहल्याबाई के शिक्षक ने—जो पास में ही थे—उसके स्वभाव गुणों तथा चाल-चलन की प्रशंसा की और परिचय दे दिया। मल्हारराव ने अहल्याबाई का अपने पुत्र खंडेराव से विवाह कराया।

उन्नीस वर्ष भी पूरे नहीं हुए कि अहल्याबाई का भाग्य फूट गया। सन् १७५४ ई० में खंडेराव कुंभेरी के घेरे में मारे गये। अहल्याबाई सती भी नहीं होने पाई। उसके एक पुत्र तथा एक पुत्री थी।

मल्हारराव की अनुपस्थिति में अहल्याबाई राजकाज बड़ी कुशलता से करती रही। उसकी होशियारी को देखकर

मल्हारराव ने अपना पूरा कारोबार उसको सौंप दिया। मल्हारराव के पश्चात् अहल्याबाई के पुत्र, मालेराव को गद्दी मिली; परंतु वह भी थोड़े दिनों में चल बसा। तब रानी ने बड़े धीरज के साथ राज-काज चलाया।

अहल्याबाई धैर्य का पालन करने में बड़ी तत्पर थी। स्नान-ध्यान, पूजा-पाठ करने में वह कभी नहीं चूकती थी। उसने अनाथों और भूखों को अपने हाथ से भोजन दिया। प्रजा को सब तरह से सुखी रखा। उसने नये-नये नगर बसाये; बड़ी-बड़ी सड़कें, स्थान-स्थान पर मंदिर, धर्मशालाएँ, कुएँ, घाट, पुल आदि बनवाये।

अहल्याबाई ने प्रजा के हृदय में घर कर लिया। उसने राज्य-शासकों के लिये एक महान् आदर्श उपस्थित किया।

धन्य है देवी अहल्याबाई! और यह देश, हमारा भारतवर्ष!



पाठ २

दमयन्ती

दमयन्ती विदर्भ देश के राजा भीमसेन की पुत्री थी। वह बड़ी रूपवती और विद्यावती थी। उसके गुण और सौंदर्य की प्रशंसा सारे भारतवर्ष में फैली हुई थी। उसी समय निषध देश के राजकुमार नल के गुण और वीरता की चर्चा चारों ओर चल रही थी। नल और दमयन्ती ने एक दूसरे की प्रशंसा सुनी और उनमें प्रेम हो गया।

कुछ समय बाद जब स्वयंवर हुआ तब दमयन्ती ने नल के गले में जयमाल पहना दी। दोनों का विवाह हुआ और सुख से दिन बीतने लगे। लेकिन नल के अनेक गुणों के साथ-साथ उसमें जुआ खेलने का दुर्गुण भी बहुत बड़ा था।

जुए का शौक होने पर भी नल उस विद्या में बहुत चतुर नहीं था। उसके पुष्कर नाम के महाधूर्त जुआड़ी भाई ने छल करके जुए में उसका सब राजपाट जीत लिया। नल अपनी स्त्री को लेकर घर से बाहर निकला। उसने दमयन्ती से बहुत कहा—"तू अपने पिता के घर चली जा।" लेकिन दमयन्ती ने दुःख में पति का साथ छोड़ना स्वीकार नहीं किया। वह भयानक जङ्गलों में उसके साथ-साथ घूमती रही।

नल दुःख में अपनी स्त्री का कष्ट देखकर और भी घबराता था। उसने सोचा—यदि मैं दमयन्ती को छोड़कर चला जाऊँ तो लाचार होकर वह अपने पिता के घर चली जायगी।

इस विचार से एक रात को जब दमयन्ती सो रही थी, नल उसको छोड़कर चला गया। यह कह देना आवश्यक है कि दमयन्ती ने घर छोड़ते समय अपने दो बच्चों को अपने पिता के घर भिजवा दिया था।

सवेरे जब दमयन्ती सोकर उठी, तब नल को न पाकर वह बेहोश हो गई। जब होश हुआ तब व्याकुल होकर रोने-कलपने लगी। अपने प्राणपति का नाम लेकर वह वन-वन भटकती फिरती थी।

इस प्रकार जब वह अकेली रो-रोकर कलप रही थी, एक अजगर ने आकर उसको घेर लिया। दमयन्ती व्याकुल होकर और भी जोर से रोने लगी। उसका रोना सुनकर एक बधिक आया जिसने अजगर को मारकर दमयन्ती के प्राण बचाये। बधिक दमयन्ती का सुन्दर रूप देखकर मोहित हो गया और मन में उसके साथ दुर्व्यवहार करने की अभिलाषा करने लगा।

दमयन्ती अब बिलकुल घबराकर परम-पिता जगदीश्वर को पुकारने लगी। बधिक ने दमयन्ती को मारने के लिये बाण चलाया। लेकिन ईश्वर की महिमा धन्य है! जिस बाण से पापी व्याघ्र पतिव्रता दमयन्ती को मारना चाहता था वह बाण उसी को जा लगा, और देखते-देखते व्याघ्र के प्राण निकल गये।

ऐसे ही और बहुत से सङ्कटों को झेलती हुई दमयन्ती सुबाहु नगर के राजा के यहाँ गई और रानी की दासी बनकर रहने लगी। जब दमयन्ती के पिता ने यह समाचार सुना तब उसको अपने घर बुला लिया।

इधर नल दमयन्ती को छोड़कर घूमता-भटकता अयोध्या में पहुँचा और वहाँ के राजा के यहाँ सारथी का काम करने लगा।

कुछ दिन पिता के यहाँ रहने के बाद दमयन्ती ने सोचा कि किसी प्रकार नल का पता लगाना चाहिये। इस विचार से देश-देश में दूत भेजे गये। जो दूत अयोध्या गया था उसने लौटकर अयोध्या-नरेश के सारथी के गुणों का वर्णन किया। वर्णन से दमयन्ती को मालूम हो गया कि वह सारथी उसके स्वामी राजा नल के सिवाय दूसरा कोई नहीं हो सकता।

नल के बुलाने का उसने अच्छा उपाय सोचा। दमयन्ती ने अयोध्या के राजा ऋतुपर्ण के पास दूत भेजकर कहलवाया—"अब राजा नल का कुछ पता नहीं है। इसलिये मैं पुनर्विवाह के लिये स्वयंवर करना चाहती हूँ। आप कल सबेरे विदर्भ में पहुँच जाइये।"

दमयन्ती को पूरा विश्वास था कि सिवाय नल के दूसरा कोई ऐसा रथ नहीं हाँक सकता कि इतनी जल्दी अयोध्या से विदर्भ में पहुँच जाय।

जब अयोध्या के राजा नियत समय पर विदर्भ पहुँच गये तब दमयन्ती को एक प्रकार से निश्चय हो गया कि राजा नल ही अयोध्या नरेश का सारथी बना हुआ है।

दमयन्ती के स्वयंवर की बात सुनकर नल को बहुत दुःख हुआ। यद्यपि दमयन्ती को यह मालूम हो गया था कि उसका स्वामी ही अयोध्या-नरेश का सारथी बना हुआ है

तथापि इस बात को दृढ़ करने के लिए वह और पता लगाने लगी। दमयन्ती ने पता लगाने के लिये कई बार दूत भेजा लेकिन नल ने अपने असली स्वरूप का पता नहीं लगने दिया। अन्त में दमयन्ती ने अपने दोनों बच्चों के साथ दासी को भेजा। बच्चों को देखकर नल के आँसू न रुक सके। वह दासी से कहने लगा—"तू इन बच्चों को ले जा। मेरे भी ऐसे ही बच्चे हैं। इनको देखकर मुझे उनकी याद आती है। आज तक ये नल के हैं। कल से किसी और के हो जायँगे।"

अब दमयन्ती को कुछ भी सन्देह नहीं रह गया। वह स्वयं नल के पास गई और उनके चरणों पर गिर कर कहने लगी—"नाथ! तुम्हारा पता लगाने ही के लिये यह स्वयंवर रचा गया था।"

अयोध्या के राजा को जब यह बात मालूम हुई तब उन्होंने नल का बड़ा सम्मान किया। अयोध्या से दमयन्ती के साथ आकर नल ने अपना राजपाट सब जीत लिया। तब से नल और दमयन्ती सुख से रहने लगे, क्योंकि उस दिन से नल ने फिर जुए का नाम नहीं लिया।

पाठ ३

रानी-दुर्गावती

मुगल बादशाह अकबर का नाम सब लोग जानते हैं। उन्होंने लगभग पचास वर्ष तक राज्य किया। वे और बादशाहों की अपेक्षा हिंदुओं पर अधिक प्रेम रखते थे, हिंदुओं ने भी उनको अपना राज्य बढ़ाने में बड़ी मदद दी।

अकबर के समय में मध्य भारत में दुर्गावती नामक एक रानी राज्य करती थी। वह अत्यन्त सुन्दरी, गुणवती और बचपन ही से बड़ी वीर थी। उसकी सुन्दरता, उसके अनुपम गुणों और साहस को सुनकर दलपतशाह नामक एक राजकुमार ने उसके साथ विवाह करने की इच्छा प्रगट की। परन्तु दुर्गावती के पिता ने उसे स्वीकार नहीं किया। तब राजकुमारी दुर्गावती ने अपने पिता की इच्छा के विरुद्ध उससे विवाह कर लिया। लेकिन विवाह होने के तीन-चार वर्ष के बाद ही विधवा हो गयी। उसके एक पुत्र हुआ था, जिसकी अवस्था तीन वर्ष की थी। अब वह खुद अपने बच्चे का पालन-पोषण करने लगी और राजकाज भी सँभालने लगी।

महारानी दुर्गावती अपनी प्रजा को बहुत प्यार करती थी और प्रजा भी उसे जी-जान से चाहती थी तथा उसके लिए मरने को तैयार रहती थी। उसके राज्य में सब सुखी थे। महारानी के सुराज्य के प्रभाव से राज्य का खजाना भी धन-दौलत से खूब भरपूर था।

कुछ मुगल सरदारों से दुर्गावती का यश और ऐश्वर्य

नहीं देखा गया। वे उससे जलने लगे। सरदारों ने अकबर से दुर्गावती के राज्य पर चढ़ाई करने की आज्ञा माँगी, लेकिन बादशाह नहीं चाहते थे कि एक विधवा स्त्री पर अत्याचार हो। पर आसफ खाँ नामक एक सरदार बड़ा चालाक था। उसने किसी तरह बादशाह को बहकाकर रानी दुर्गावती से युद्ध करने की अनुमति ले ही ली। उसने समझा था कि दुर्गावती एक औरत है और उसका राज्य भी बहुत छोटा है, वह हम से कैसे लड़ सकती है। यह सोचकर कुछ फौज के साथ उसने दुर्गावती का किला घेर लिया। यह बात पहिले ही से दुर्गावती ने सुन रखी थी। उसको युद्ध करने के सिवाय और कोई उपाय न सूझा। अपनी सेना के साथ उसने मुगलों का सामना किया। बड़ी ही घमासान लड़ाई हुई। दुर्गावती के पराक्रम व युद्ध कौशल के सामने शत्रु नहीं टिक सके। शत्रु की सेना युद्ध क्षेत्र से भाग निकली। सेना का सरदार आसफखाँ भी अपनी जान लेकर भागा।

हार खाने के कारण आसफखाँ बहुत लज्जित हुआ। उसने दुर्गावती से बदला लेने के लिए एक बहुत भारी सेना इकट्ठी कर चुपचाप चढ़ाई कर दी। रानी दुर्गावती को इस बात का पता लग गया वह बड़ी समझदार और राजनीतिज्ञ थी। उसने खूब जोर-शोर से लड़ाई की तैयारी की। वह जानती थी कि मुगल राजसत्ता के सामने सिर उठाने का मतलब अपनी जान या राज्य से हाथ धोना है। अपने बच्चे को पीठ पर बाँध कर हाथ में नंगी तलवार ले वह युद्ध के मैदान में कूद पड़ी। दोनों सेनाओं में घोर युद्ध हुआ। रानी

हाथ में तलवार लिये मैदान में शत्रुओं के बीच रणकौशल दिखाती हुई चारों तरफ बिजली की तरह चमक रही थी। उस दिन की लड़ाई में वीराङ्गना दुर्गा ने असंख्य शत्रुओं का संहार किया। आसफखाँ बड़ी बुरी तरह हारकर मैदान छोड़ भाग गया।

भला, आसफखाँ एक स्त्री से इस तरह अपमानित होकर चुप कैसे बैठा रह सकता था? उसको अच्छी तरह मालूम हो गया कि दुर्गावती को युद्ध में जीतना उसकी ताकत के बाहर की बात है। इसलिये धोखा देकर दुर्गावती को हराने का उसने एक कुटिल उपाय निकाला। आसफ ने बहुत-सा धन देकर रानी के सैनिकों को अपनी तरफ कर लेने को दूत भेजे। दूतों ने रिश्वत देकर और सैनिकों को तरह-तरह का लालच दिखलाकर रानी के कई सरदारों को अपने वश में कर लिया। उसके राज्य में दंगे होने लगे। प्रजा लालची सैनिकों के अत्याचार से क्षुब्ध हो उठी। आसफखाँ अपनी कूटनीति में सफल हुआ। जिस राज्य को वह अपने हजारों सिपाहियों का खून बहाकर नहीं जीत सका था, उसको जीतना अब उसके बायें हाथ का खेल हो गया। इधर रानी भी अपनी प्यारी प्रजा की बुरी दशा देखकर बहुत दुखी हो उठी। शत्रुओं को जीतना उसके लिए कठिन था, इसलिये लड़कर प्राण देने के सिवाय उस वीराङ्गना को और कोई उपाय न सूझ पड़ा। वह अपने थोड़े-से स्वामिभक्त सरदारों को लेकर लड़ाई के मैदान में आकर डट गई। अब भी उसकी वीरता जरा भी कम नहीं हुई। उसके सरदार भी दिल खोलकर शत्रुओं से

लड़े । दुर्गावती को युद्ध-क्षेत्र में खबर मिली कि उसका लड़का बुरी तरह घायल हो गया है । परन्तु उसने इसकी तनिक भी परवाह न की और अन्त तक लड़ती रही । उसके सब वीर सैनिकों ने युद्ध में अपने प्राण दे दिये ।

जब दुर्गावती ने देखा कि अब शत्रुओं से बचना मुश्किल है और कैद हो जाने पर अकबर के सामने सिर झुकाना पड़ेगा तो उसने युद्ध-क्षेत्र ही में आत्महत्या कर ली। धन्य है दुर्गावती, जिसकी वीरता और साहस पुरुषों के लिए भी आदर्श है !

———

पाठ ४

महारानी पद्मिनी

वीर पुत्री पद्मिनी चित्तौड़ के महाराजा भीमसिंह की पत्नी थीं। भीमसिंह बड़े ही पराक्रमी और शूरवीर थे। महारानी पद्मिनी जैसी ही रूपवती थी वैसी ही चतुर और वीरांगना भी थीं। पद्मिनी के रूप की प्रशंसा दूर-दूर तक फैली हुई थी।

इन दिनों अलाउद्दीन खिलजी दिल्ली का बादशाह था। अलाउद्दीन की सभा में भी महारानी के रूप की चर्चा हुई। पद्मिनी की प्रशंसा सुनकर उसने निश्चय किया कि जैसे भी हो पद्मिनी को अपने महल में लाना चाहिये।

यह सोचकर उसने सेना साथ ली और चित्तौड़ को जा घेरा। राजपूतों ने भी प्राणों की बाजी लगा दी। बड़ा घमासान युद्ध हुआ। अलाउद्दीन की सेना चित्तौड़गढ़ को न जीत सकी।

उसने महाराजा भीमसिंह के पास संदेश भेजा कि यदि एक बार मुझे पद्मिनी का मुख दिखला दिया जाए तो मैं घेरा उठाकर दिल्ली चला जाऊँगा।

यह बात सुनकर महाराजा भीमसिंह और दूसरे राजपूत सरदारों के क्रोध का ठिकाना न रहा। किन्तु अन्त में वे इस बात पर सहमत हो गये कि रानी का मुख इस प्रकार दिखाया जा सकता है कि वह दूर खड़ी हो जाये और एक बड़े दर्पण पर उसकी छाया को अलाउद्दीन देख ले। यह भी निश्चित

हो गया कि अलाउद्दीन के साथ किले के भीतर दो एक साथियों से अधिक व्यक्ति न आएँ।

अलाउद्दीन ने बेखटके दोनों बातें स्वीकार कर लीं। उसे मालूम था कि राजपूत अपने वचन के पक्के होते हैं, और उसके साथ किसी प्रकार का छल-कपट नहीं किया जायेगा। वह अपने एक दो साथियों को लेकर गढ़ में चला गया। राजपूत चाहते तो बड़ी सुगमता से उसे मार डालते, किन्तु वे तो वीर थे। वीर पुरुष छल-कपट से काम नहीं लेते। उन्होंने अपने वचन के अनुसार दर्पण में महारानी की छाया दिखला दी।

अलाउद्दीन जब लौटने लगा तो महाराजा भीमसिंह उसके साथ गढ़ के मुख्य द्वार तक गये। जब वे वहाँ से लौटने लगे तो अलाउद्दीन ने कहा—"जैसे मैं तुम्हारा विश्वास करके यहाँ चला आया हूँ, तुम भी मेरा विश्वास करके मेरी छावनी में चलो।" भीमसिंह उसके कहने पर विश्वास करके गढ़ से बाहर चले गये। अलाउद्दीन के मन में तो पहले से ही कपट था। उसने अपने सिपाही पहले से ही घात में बिठा रखे थे। उन्होंने झट भीमसिंह को कैद कर लिया और अपनी छावनी में ले गये। अलाउद्दीन ने गढ़ में रानी को सन्देश भेज दिया कि मुझसे विवाह कर लो नहीं तो राजा को मार डाला जाएगा।

राजपूतों ने यह सुना तो आग-बबूला हो उठे। किन्तु पद्मिनी बड़ी चतुर थी। उसने एक युक्ति सोची। सारे राजपूतों को इकट्ठा करके उसने कहा—"हमारे साथ धोखा हुआ है।

धोखे का बदला धोखे से ही लेना चाहिए।" उसने खिलजी को कहला भेजा कि "मेरे पति को न मारिये, मैं विवाह करने के लिये तैयार हूँ। किन्तु मेरी सहेलियाँ और दासियाँ मुझे किसी तरह भी अलग नहीं करना चाहतीं। वे भी मेरे साथ आएँगी। हम सब पालकियों में बैठकर आएँगी जिससे हमें दूसरे लोग देख न सकें।"

अलाउद्दीन ने सुना तो उसकी प्रसन्नता का ठिकाना न रहा। उसने समझा, अब पद्मिनी मेरी हो गई। वह अपनी चतुराई की मन ही मन प्रशंसा करने लगा। सिपाही भी खूब प्रसन्न थे। उन्होंने सोचा "अब लड़ाई-झगड़े से तो जान बची।" राजपूतों ने उनकी नाक में दम कर रखा था।

गढ़ का मुख्य द्वार खुला और पालकियों की कतार-की कतार बाहर निकली। सबसे आगेवाली पालकी खूब सजी हुई थी। सब ने यह समझा यह रानी की पालकी है। तभी तो इतनी सजी हुई है। परन्तु यहाँ तो कुछ और ही था। एक-एक पालकी में दो-दो शस्त्रधारी वीर राजपूत बैठे हुए थे। प्रत्येक पालकी को छः-छः कहार उठाये हुये थे। यह सब ही लड़ाके वीर थे। महारानी वाली पालकी में बादल नाम का एक वीर राजपूत लड़का बैठा हुआ था।

गोरा नामक एक राजपूत इस जत्थे का सरदार था। उसने अलाउद्दीन से कहा कि "पद्मिनी आपके पास आने से पहले अपने पति से मिलना चाहती है।" अलाउद्दीन ने मिलने की आज्ञा दे दी और जिस खेमे में भीमसिंह कैद थे उसका रास्ता बताने के लिए एक आदमी को साथ भेज दिया।

कहारों ने वह सजी हुई पालकी उठाई और खेमे की ओर चल पड़े। खेमे में पहुँचकर बादल ने भीमसिंह की हथकड़ियाँ काट दीं और उन्हें कवच पहनाकर शस्त्रों से लैस कर दिया। हथकड़ियाँ काटने का सामान पहले ही से साथ रखा हुआ था।

सन्ध्या का समय था। कुछ-कुछ अँधेरा हो चला था। सारे राजपूत, खुशी में मस्त अफगानों पर टूट पड़े। बड़े जोर की मार काट हुई।

अलाउद्दीन को निराश होकर लौटना पड़ा। उसके कितने ही सिपाही मारे जा चुके थे। परन्तु दूसरे वर्ष वह फिर बहुत सेना लेकर चढ़ आया। महाराजा भीमसिंह ने अपनी बची-खुची सेना के साथ शत्रु का पूरा-पूरा सामना किया, किंतु कुछ न बन सका। एक-एक शत्रु के साथ जूझता हुआ कट मरा गढ़ में रानी पद्मिनी तथा अन्य राजपूतानियों ने जब देखा कि हमारे पति शत्रु से लड़ते-लड़ते कट मरे हैं तो उन्होंने जौहर व्रत का पालन किया। जब राजपूत शत्रु से लड़ते-लड़ते कट मरते थे तो राजपूत स्त्रियाँ स्वयं आग में जल जाती थीं जिससे शत्रु उनका अपमान न कर सके। रानी पद्मिनी भी सब राजपूतानियों समेत जलकर सती हो गई।

पाठ ५

सती सावित्री

प्राचीन काल में काशी नरेश की सावित्री नाम की कन्या थी। सावित्री गुणों से सम्पन्न तथा लाड़-प्यार से पाली गई थी। जब वह विवाह योग्य हुई तो उन्होंने उसे स्वयंवर कर विवाह करने की आज्ञा दी।

सावित्री का रथ घूमता हुआ एक जंगल में पहुँचा। वहाँ उसे लकड़ियाँ काटता हुआ एक लकड़हारा मिला। वह बड़ा हृष्ट-पुष्ट और रूपवान था। उसके चेहरे पर पवित्रता और मधुरता के भाव टपक रहे थे। उसका नाम था सत्यवान। वह क्षत्रिय राजकुमार था।

सत्यवान के पिता पहले विशाल राज्य के स्वामी थे। अब समय के फेर से वन में मारे-मारे फिरते थे और सत्यवान लकड़ियाँ काटता था। सावित्री ने पवित्र मन से उसी को पति निश्चय किया। वह अपने पिता की स्वीकृति के लिये लौटी। पिता ने उसका मन दूसरी ओर फेरना चाहा परन्तु वह अपने निश्चय पर अटल रही।

सावित्री के पिता ने अन्त में उनका विवाह कर दिया। सावित्री अपने पति के साथ जंगल में आकर रहने लगी। वह राजमहल का सुख भूल गई। वह बूढ़े सास ससुर की सेवा करती, लकड़ियाँ काटने में अपने पति की सहायता भी करती। लकड़ियाँ काटकर लौटने पर पति की सेवा करती।

वन से लाकर उन्हें फल खिलाती। उसे देखकर कोई भी यह न कहता कि यह वैभव तथा लक्ष्मी की गोद में पली हुई राजकन्या है।

एक दिन सत्यवान वन में लकड़ियाँ काट रहे थे। एकाएक उनके सिर में असह्य पीड़ा उठी। सावित्री वहीं बैठी थी। सावित्री अपने पति का सिर गोद में रख सेवा करने लगी। पीड़ा बढ़ती गई। सत्यवान के हृदय की गति मन्द पड़ने लगी। सावित्री घबराई। उसने भगवान का स्मरण किया, परन्तु पति की सेवा-सुश्रूषा न छोड़ी।

इतने में वहाँ प्रकाश दिखलाई पड़ा। भैंसे पर चढ़े स्वयं यमराज सत्यवान के प्राण हरने आये। यमराज का आना था और सत्यवान का निर्जीव होना। सावित्री ने फिर भी धैर्य न छोड़ा। सत्यवान का अनुराग उसे यमराज के पीछे-पीछे ले चला। यमराज उसे पीछे-पीछे आते देख घबराए।

उन्होंने सावित्री से कहा—बेटी, क्या माँगती है? क्यों पीछे-पीछे आ रही है? जो चाहती है, माँग। सावित्री ने कहा—यदि आप प्रसन्न हैं तो मुझे वर दें कि मेरे पास विपुल धन हो। यमराज ने कहा अच्छा, ऐसा ही होगा। सावित्री ने यमराज का पीछा फिर भी न छोड़ा। तब यमराज ने फिर पूछा तुम क्या चाहती हो? सावित्री ने इस बार यह वर माँगा कि मेरे सन्तान हो। यमराज ने कहा—अच्छा, ऐसा ही होगा। तब भी सावित्री को अपना पीछा करते देख यमराज ने झुँझलाकर कहा—और जो कुछ माँगना हो माँग लो और लौट जाओ।

सावित्री ने कहा कि यदि आप प्रसन्न हैं तो मुझे अटल सौभाग्य प्रदान करें। यमराज को करुणा आई। उन्होंने कहा अच्छा, जाओ ऐसा ही होगा। यमराज ने अपने भैंसे को एँड़ लगाई परन्तु सावित्री ने उनका आँचल पकड़ विनय की—देव पति के बिना सौभाग्य कैसे हो सकता है ?

यमराज सावित्री की चतुराई समझ गये। यमराज सावित्री की चतुराई पर मन ही मन मुदित हुए। उन्होंने सत्यवान को जीवनदान दिया। सत्यवान पुनः जी उठे। दोनों हँसते-खेलते घर पहुँचे। वहाँ सत्यवान के राज्य के नागरिक इकट्ठे हुए थे। उन्होंने विदेशी राजा को हराकर फिर राज्य करने की प्रार्थना की। सत्यवान ने राज्य जीता। दोनों सुख से जीवन बिताने लगे। सबने सावित्री की प्रशंसा की।

———

पाठ ६

देवल देवी

बहुत वर्ष पहले बुँदेलखंड में परमाल नाम के राजा राज्य करते थे। उनकी राजधानी महोबा में थी। परमाल की सभा में जशराज सिंह नाम का एक बड़ा ही बहादुर सरदार था। उसने न जाने कितनी लड़ाइयाँ जीती थीं। मरना और मारना ही उसका काम था। उसने परमाल के राज्य को बहुत बढ़ा दिया था। अंत में एक लड़ाई में उसकी मृत्यु हो गई। आल्हा-ऊदल इसी जशराजसिंह के बेटे थे। जब बाप मरा, तब ये लोग छोटे-छोटे थे। देवल देवी इनकी माता थीं। वे बड़े प्रेम से इनका पालन-पोषण करती थीं।

देवल देवी भी बड़ी बहादुर स्त्री थीं। जब आल्हा-ऊदल कुछ बड़े हुए, तब देवी उन्हें जंगल ले जातीं और उन्हें लड़ाई का काम सिखाती थीं। वे बेटों को शिकार खेलना, तीर-तलवार और भाला चलाना, घोड़े की सवारी करना, ये सब लड़ाई के काम सिखाती थीं। परमाल भी उन लोगों पर बड़ा प्रेम करते थे और उन्हें किसी बात की तकलीफ न होने देते थे। पन्द्रह वर्ष के होते-होते ये लोग लड़ाई का सब काम सीख गए और इन्होंने अपने बाप के दुश्मन पर चढ़ाई कर दी। देवल देवी भी उनके साथ गई थीं और बेटों का दिल बढ़ाया करती थीं। दोनों भाई बड़ी बहादुरी से लड़े और दुश्मन को मारकर घर लौटे।

दोनों भाइयों की जीत से राजा परमाल को बड़ी खुशी हुई। उन्होंने इन दोनों को बड़े प्रेम से दरबार में रक्खा।

फिर तो इन लोगों ने परमाल के कितने ही बैरियों को हराया। दिन-दिन उन पर परमाल का प्रेम बढ़ने लगा। यह देखकर कई दुष्ट लोग जल उठे। वे परमाल से उनकी चुगलियाँ करने लगे। परमाल भी उनकी बातों में आ गये। लोगों के कहने से परमाल ने उनके पाँचों घोड़े छीनने चाहे। पर देवल देवी ने बेटों से कहा—तुम अपनी सवारी के घोड़े कभी राजा को मत दो। डरने का काम नहीं है। तुम वीर पुत्र हो। वह तुम्हारा कर ही क्या सकता है ? जब आल्हा-ऊदल ने परमाल को घोड़े न दिये, तब तो उन्हें बड़ा गुस्सा आया और उन्होंने दोनों भाइयों को अपने राज्य से निकाल दिया।

आल्हा-ऊदल अपनी माता को साथ लेकर कन्नौज चले गये। वहाँ के राजा जयचन्द ने बड़ी खुशी से इन लोगों को अपने पास रख लिया। यहाँ इन लोगों को आये अभी थोड़े ही दिन हुए थे कि दिल्ली के महाराज ने परमाल पर चढ़ाई कर दी। परमाल भी अपनी फौजें लेकर लड़ाई में गये। वे पृथ्वीराज से लड़े पर दिन-पर-दिन उनकी हार ही होती गई। अब परमाल को आल्हा-ऊदल की याद आई और वे अपनी गलती पर पछताने लगे। उन्होंने आल्हा-ऊदल को बुलवाने के लिये फौरन अपना एक सरदार कन्नौज को दौड़ाया।

सरदार ने आल्हा-ऊदल को सब हाल सुनाया और कहा—"आप लोग जल्दी से महोबा चलिये। महाराज परमाल आपकी बाट देख रहे हैं। बिना आपके चले महोबा की कुशल नहीं है !" ऊदल ने चट से उत्तर दिया—'हम कुछ

नहीं जानते। जैसा परमाल को दिखे करें । हमें तो उन्होंने निकाल ही दिया है, अब हमसे उनसे क्या मतलब ?'

देवल देवी भी पास ही खड़ी-खड़ी ये बातें सुन रही थीं। उन्होंने आल्हा-ऊदल से कहा—'नहीं बेटा, ये बातें भूल जाओ। चलो, हम लोग चलकर महोबा को बचा लें।' तब ऊदल ने खीजकर कहा—'माता कैसी बातें करती हो ? क्या वह दिन याद नहीं है जब उसने हम लोगों को वहाँ से निकाल दिया था ? अब हम लोग उसके पीछे क्यों अपना खून बहावें ?'

ये बातें सुनकर देवल देवी को भी बड़ा गुस्सा आया वे बेटों से गरजकर बोलीं, 'धिक्कार है तुम लोगों को ! तुम लोग पूरे डरपोक हो। क्या महोबा तुम्हारा देश नहीं है ? तुम्हारे उसी देश को दुश्मन पैरों से रौंदते रहें, और तुम यहाँ मजे उड़ाते रहो। जाओ मैं तुम्हारा मुँह भी नहीं देखना चाहती !'

तब ऊदल ने प्रतिज्ञा की—'अच्छा, यदि आपकी ऐसा आज्ञा है, तो चलिये। हम प्रतिज्ञा करते हैं कि हम लोग अपनी जन्म-भूमि की रक्षा के लिये अपने प्राण दे देंगे।'

सब लोग दलबल समेत महोबा आये। परमाल ने उनका बड़ा आदर किया। दूसरे ही दिन आल्हा-ऊदल हथियारों से लैस होकर लड़ाई करने गये। उन्होंने पृथ्वीराज के सैकड़ों आदमी धरती पर सुला दिए। अन्त में वे लोग भी लड़ते-लड़ते मारे गए !

आज तक आल्हा-ऊदल की बहादुरी की तारीफ होती है। उन्हें ऐसा बहादुर उनकी माता ही ने बनाया था।

पाठ ७

पन्ना का अपूर्व त्याग

राजपूताने में मेवाड़ बहुत दिनों से मशहूर है। वहाँ के राजाओं ने हमेशा बड़ी बहादुरी दिखाई है। अपने राज्य को दुश्मनों से बचाने में कभी जान की परवा नहीं की। वहाँ की बहादुर औरतें न जाने कितनी बार आग में कूद पड़ी हैं। पन्ना इसी मेवाड़ की रहने वाली एक राजपूत औरत थी, जो महाराणा सांगा के छोटे लड़के उदयसिंह की दाई थी।

महाराणा सांगा के मरने के बाद उदयसिंह का बड़ा भाई विक्रमादित्य राजा बना। लेकिन वह ऐसा निकम्मा राजा हुआ कि उसने सारी प्रजा को सताना शुरू कर दिया; इसलिए राज्य के सरदारों ने मिलकर उसे गद्दी से उतार दिया। अभी उदयसिंह की उम्र सिर्फ छः बरस की थी, इसलिये सब सरदारों ने सलाह करके राजकुमार के बड़े होने तक राज्य का काम बनबीर को सौंप दिया।

सरदारों ने समझा कि बनबीर ईमानदारी से काम करेगा, और उदयसिंह के बड़े होने पर राज्य उसे सौंप देगा। लेकिन गद्दी पर बैठते ही उसकी नियत बदल गयी। महाराणा सांगा की सन्तान उसकी आँखों में काँटों की तरह चुभने लगी। गद्दी पर आते ही बनबीर ने विक्रमादित्य को कैद कर लिया था। एक रात उसका काम तमाम करके वह उदयसिंह को मारने के लिये लपका। वह अच्छी तरह जानता था कि राज्य

का असली मालिक उदयसिंह ही है। और जिस दिन वह बड़ा हो जायगा, उसी दिन मैं गद्दी से उतार दिया जाऊँगा। इसलिए बनबीर ने उस काँटे को निकालकर फेंक देने की बात सोची।

पन्ना उदयसिंह के पास बैठी उसे सुला रही थी। उसके पास ही चारपाई पर उसका इकलौता बेटा सोया हुआ था। उसकी उम्र भी उतनी ही थी, जितनी उदयसिंह की थी। इसी वक्त एक नौकर अन्दर घबड़ाया हुआ आया और बोला—"पन्ना, अब कुँवर की खैर नहीं। बनबीर तलवार लेकर उसे मारने के लिए इधर आ रहा है।" पन्ना यह सुनकर थोड़ी देर के लिये सुन्न हो गयी। लेकिन फौरन ही उस बहादुर औरत ने तय कर लिया कि ऐसे वक्त में क्या करना चाहिये। वह झट दूसरी कोठरी में से एक बड़ा टोकरा लाई और उसमें सोये हुए उदय-सिंह को लिटाकर ऊपर जूठी पत्तलें रख दीं। उस नौकर से बोली कि लो तुम झट इस टोकरे को लेकर किले के बाहर निकल जाओ। मैं आकर तुमसे मिलती हूँ।

अब पन्ना ने इकलौते बेटे को उदयसिंह की चारपाई पर लिटा दिया। और बनबीर का इन्तजार करने लगी। इतने में खट से दरवाजा खुला और हाथ में नङ्गी तलवार लिये हुए बनबीर घबड़ाता हुआ अन्दर आ धमका। आते ही उसने डपटकर पूछा, 'पन्ना, बता उदयसिंह कहाँ है?'

पन्ना के मुँह से आवाज तो न निकली, मगर अपने सोते हुए इकलौते बेटे की तरफ उसने हाथ से इशारा कर दिया। बनबीर ने एक ही हाथ से उस बच्चे का सिर धड़

से अलग कर दिया और कमरे से निकल गया। बेचारी पन्ना अपने बेटे के लिये रो भी न सकी।

बनबीर खुशी के मारे फूला न समाया और अपनी समझ में राजकुमार को मारकर बेफिक्र हो गया। इस खबर के फैलते ही महल में कुहराम मच गया। लाश के अग्नि-संस्कार के बाद पन्ना वहाँ से चल दी। पन्ना राजकुमार को लेकर बहुत दिनों तक इधर-उधर भटकती फिरी। बनबीर के डर से कोई सरदार राजकुमार को अपने यहाँ रखने के लिये राजी न हुआ। आखिरकार कुम्भलमेर के सरदार ने उदयसिंह को बचाने का पन्ना को आश्वासन दिया और उसे अपने यहाँ रख लिया।

कुछ बरसों बाद यह भेद खुल गया। इस समय उदयसिंह की उम्र बारह साल की थी। चित्तौड़ के सब स्वामिभक्त सरदार अपने असली राजा को पाकर बहुत खुश हुए और उसे गद्दी पर बैठाया। पन्ना ने अपने मालिक की जान बचाने के लिये जो वीरतापूर्ण त्याग किया, उसकी तारीफ नहीं की जा सकती। इससे पन्ना का नाम दुनिया में अमर हो गया।

———

पाठ ८

अरगल की वीर रानी

आज से छः सौ वर्ष पहले की बात है। जब दिल्ली की गद्दी पर नासिरुद्दीन बादशाह राज्य करता था, तब अवध के सूबे में अरगल नाम की एक छोटी सी रियासत थी। यहाँ का जागीरदार एक राजपूत राजा था। उसका नाम गौतम था।

एक बार राजा गौतम पठानों को जीतकर आया था। जीत की खुशी में सारी प्रजा को बड़ी दावत दी। आसपास के राजा और रईस, बड़े और छोटे, अमीर और गरीब सबको निमंत्रण दिया गया था। यह भोज कई दिनों तक चलता रहा। उसकी रानी भी आये हुए मेहमानों का खूब आदर-सत्कार करती रही। वह सबके आराम का ख्याल रखती थी। वह बड़ी दयालु रानी थी।

अभी दावत पूर्ण भी न होने पाई थी कि इतने में अमावस्या का दिन आ गया। रानी का नियम था कि प्रति अमावस्या को वह गंगा-स्नान किया करती थी। आज तक ऐसी कोई अमावस्या न गई थी, जिसमें रानी ने गंगास्नान न किया हो। गंगाजी उस समय अरगल रियासत के बाहर बहती थीं। जिस घाट पर रानी नहाने जाया करती थीं वह घाट पठानों की हद में था। उन्हीं की पलटन वहाँ रहती थी। रानी बहुत धार्मिक थी। उसने सोचा कि यदि मैं इस बार गंगास्नान नहीं करती, तो मुझे बड़ा पाप लगेगा और आज तक मैंने जो पुण्य कर्म किये हैं, वे सब नष्ट-भ्रष्ट हो जायेंगे। राजा को भी इस

पाप का फल भोगना पड़ेगा। पर, गंगा के स्नान को जाने के लिए राजा से पूछने की हिम्मत नहीं पड़ती थी; क्योंकि काम का समय था रियासत भर के लोग न्योते पर आये थे।

दिन भर रानी काम में लगी रही। शाम हुई, अँधेरा हुआ, आकाश में तारे निकल आये। मंदिरों में घंटे बजने लगे, आरती होने लगी। यहाँ रानी ने चुपचाप गंगास्नान की तैयारी की। कुछ सहेलियों को साथ लेकर महल के बाहर निकल पड़ी। अमावस्या की घोर अँधेरी रात थी। कहीं कोई रास्ते में देख न ले—इस डर से रानी जंगल के रास्ते से चली और सवेरा होने के पहले ही गंगाजी के घाट पर पहुँच गई।

मेले का दिन था। नहानेवालों की भीड़ धीरे-धीरे इकट्ठी हो गई। कुछ लोग नहाने के लिए गंगा में उतर रहे थे, कुछ नहाकर वापस जा रहे थे, और कुछ बैठे हुए पूजा-पाठ कर रहे थे। कुछ लोग पानी हाथ में लेकर उछाल-उछाल कर सूर्य को अर्घ दे रहे थे, इसी समय रानी अपनी दासियों के साथ आई और गंगा में नहाने के लिए उतरी। वह नाक-कान को उँगलियों से दबाकर और आँख बन्दकर गोता मारने लगी। कहते हैं गोता लगाने से सब पाप नाश हो जाते हैं।

इसी समय जब कि रानी नहा रही थी, बहुत से लोगों ने उसे देखा। उनमें से एक ने जाकर सूबेदार को खबर दी कि कोई बड़े घराने की रानी नहाने आयी है। सूबेदार ने इसका पता लगाने के लिए कि वह कौन है? कहाँ से आयी है?

अपनी लड़की को भेजा। लड़की भी नहाने के बहाने आई और बातों में उसने पूरा पता लगा लिया।

सूबेदार इस अच्छे मौके को पाकर बड़ा खुश हुआ। उसने सोचा कि अगर रानी को गिरफ्तार कर लेंगे तो राजा हमारी अधीनता स्वीकार कर लेंगे। रानी अब तक रवाना हो चुकी थी। अभी कुछ ही दूर पहुँची होगी कि दुश्मनों ने घेर लिया। रानी आपको घिरा हुआ जानकर बिलकुल नहीं घबड़ाई। वह बड़े धैर्य और वीरता के साथ सूबेदार की तरफ देखकर बोली—"क्यों सूबेदार साहब, आप तो बहुत बहादुर दिखाई पड़ते हैं। मालूम होता है कि आप राजा साहब से हारने का बदला रानी को घेरकर चुकाना चाहते हैं। पर, याद रखिये, रानी से हारना और भी बुरा होगा। आप यह न समझिये कि मैं अकेली हूँ।" पर, सूबेदार पर रानी की इन बातों का कुछ भी असर नहीं हुआ। उसने अपने आदमियों से कहा कि रानी को गिरफ्तार कर लो। यहाँ रानी ने चिल्लाकर कहा—"सूबेदार याद रखना, अरगल की रानी को पकड़ना सहज नहीं है। क्या इस मेले में ऐसा कोई राजपूत वीर नहीं है, जो अपनी माता और बहनों की रक्षा करे? रानी का इतना कहना था कि अभयचन्द और निर्भयचन्द नाम के दो राजपूत बालक अपने आदमियों के साथ सिपाहियों को चीरते हुए आ पहुँचे। इनकी अवस्था अभी सोलह वर्ष से कम थी। ये रानी को अपनी शरण में लेकर मुसलमान सिपाहियों से लड़ने लगे। एक आदमी को अरगल के राजा के पास दौड़ाया गया। वे मीलों तक लड़ते चले गये। बहुत से आदमी

मारे गये। अन्त में अभयचन्द और उसके दो-तीन साथी ही बाकी रह गये। अब जीत की आशा जाती रही। इतने ही में बड़े जोरों की आवाज आती हुई सुनाई पड़ी।

अरगल का राजा अपनी फौज को लिये हुए आ रहा था। इधर सूबेदार ने जब सेना को आते देखा तो वह भाग खड़ा हुआ। रानी कुशल-पूर्वक महलों में पहुँच गई।

अरगल का राजा अभयचन्द की वीरता देखकर इतना खुश हुआ कि अपनी लड़की की शादी उस वीर अभयचन्द के साथ कर दी। उसे अपनी रियासत का एक हिस्सा भी दान में दे दिया।

लोग आज भी अरगल की वीर रानी की वीरता की कहानी सुनाते हैं।

———

पाठ ६

कुन्ती का त्याग

धृतराष्ट्र के पुत्र पाण्डवों से बड़ी शत्रुता रखते थे। वे किसी तरह इनके नाश का उपाय खोजने लगे। दुष्ट दुर्योधन ने वारणावत में लाख का मकान बनवाया और किसी बहाने पाण्डवों को वारणावत भेजकर उन्हें वहीं भस्म कर देने का षड्यंत्र रचा। परन्तु महात्मा विदुर की सहायता से वे उस जलते हुए लाख के भवन से निकल भागे और पाँचों भाई माता सहित अस्थिर होकर यहाँ-वहाँ रहने लगे। एक दिन व्यासदेव ने आकर उनको एकचक्रा नगरी में रहने की सलाह दी, वे वहाँ जाकर एक ब्राह्मण के घर रहने लगे।

व्यासदेव की सलाह से पाँचों पाण्डव ब्राह्मण का भेष धारण करके रहते थे। नित्य थोड़ा बहुत भिक्षा के द्वारा जो अनाज मिल जाता था, माता कुन्ती रात को उसी से भोजन तैयार करती थीं। कुल भोजन का आधा भाग भीमसेन को देकर शेष आधे में माता सहित चारों भाई अपना निर्वाह करते थे। एक दिन किसी कारण से भीमसेन भिक्षा माँगने नहीं गये। उस दिन अचानक उस ब्राह्मण के घर से रोने की आवाज आई। कुन्ती ने जब घर में आकर रोने का कारण पूछा तो मालूम हुआ कि उस नगर के समीप एक राक्षस रहता है। वह लोगों को बहुत तंग किया करता था। तब लोगों ने मिलकर उसे प्रतिदिन एक गाड़ी चावल, दो भेड़ें और एक मनुष्य का बन्धान बाँध दिया। उस दिन से इतना भोजन रोज पाकर वह राक्षस कोई उत्पात नहीं करता था। बारी

बारी से प्रत्येक घर से उस राक्षस को भोजन दिया जाता था। आज उस ब्राह्मण की बारी थी, इसलिये वह विलाप करके रो रहा था।

उस घर में ब्राह्मण, उसकी स्त्री और बेटा-बेटी समेत चार आदमी थे। ब्राह्मण कहता था—"हाय! मैं अभागा हूँ, अब इस संकट से कैसे निस्तार होगा? कोई पुत्र पर अधिक ममता रखता है और कोई कन्या पर; परन्तु मुझे तो दोनों एक समान प्रिय हैं। इनमें से मैं किसी को भी नहीं छोड़ सकता। यदि राक्षस के पास मैं स्वतः जाऊँ तो इन सबका पालन-पोषण कौन करेगा? हा दैव! तूने बड़ी विपत्ति दी, इस समय क्या करूँ, कुछ समझ में नहीं आता!"

तब ब्राह्मण की स्त्री ने धीरज देकर कहा—"हे नाथ! आप समझदार होकर भी साधारण आदमियों की नाईं क्यों विलाप करते हैं? आपके एक पुत्र और एक कन्या है। अब हम लोग पितरों के ऋण से उऋण हो चुके हैं। आप मुझे आज्ञा दीजिये। मेरे जाने से विशेष हानि नहीं है।"

इस तरह माता को रोते देखकर लड़की को बड़ा कष्ट हुआ। तब आँसू पोंछकर कहने लगी—"माता, मुझे राक्षस के भोजनों के लिये भेजकर आप सब इस आपत्ति से अपनी रक्षा कीजिये, मेरे चले जाने से कुछ भी हानि न होगी, क्योंकि एक न एक दिन मुझे इस घर को त्यागना ही पड़ेगा, इसलिये यही उचित है कि अभी त्याग दूँ।" इतने में ब्राह्मण का छोटा पुत्र, जो अभी अबोध था, लाठी लेकर माता से तोतले शब्दों में

कहने लगा—"माता! तुम मत रोओ, मैं उस राक्षस को अभी लाठी से मारे आता हूँ।" बालक की बातों से ऐसी विपत्ति के समय भी सबको हँसी आ गई।

कुन्ती ने ब्राह्मण को धीरज बँधाकर कहा—"मेरा एक लड़का उस राक्षस के पास भोजन लेकर चला जावेगा, आप शोक न कीजिये।" परन्तु उस सात्त्विक ब्राह्मण ने इसे स्वीकार नहीं किया। वह कहने लगा—"तुम लोग हमारे घर में थोड़े दिन से आये हो, तुम हमारे अतिथि हो। अतएव हम तुम्हारे पुत्र को अपने बदले राक्षस के पास कदापि नहीं भेज सकते।" इस पर कुन्ती ने फिर कहा—"मेरा पुत्र बहुत बली है, वह मंत्रविद्या भी जानता है, उसका कोई बाल भी बाँका नहीं कर सकता। इसके पहले वह एक राक्षस को मार भी चुका है। मुझे भरोसा है कि वह इस राक्षस को भी मार कर आवेगा।"

कुन्ती के ऐसे वचनों को सुन ब्राह्मण राजी हो गया और वह कुन्ती के साथ भीम के पास आकर अपना सारा हाल सुनाने लगा। भीमसेन महाबली और दयालु थे। उन्होंने ब्राह्मण को इस भयंकर आपत्ति से बचाने के लिए अपने प्राणों की परवाह न करके उस राक्षस के पास जाना स्वीकार किया।

कुछ समय के पश्चात् युधिष्ठिर आदि चारों भाई भिक्षा लेकर घर आये। जब उन्हें भीम के इस अपूर्व साहस का हाल विदित हुआ तो उन्होंने कुन्ती से कहा—हे माता! इस जोखिम के काम में भीम को उत्तेजित करके तुमने बहुत नादानी का काम किया है, देखो अभी तक भीम के ही कारण अपनी कई बार प्राण-रक्षा हो चुकी है। अपने इस संकट के समय में वही

एक ऐसा है कि जिसके कारण हम लोग सब जगह बेखटके रहते हैं। उसको ऐसे जोखिम के काम में भेजना हम उचित नहीं समझते।

कुन्ती ने उत्तर दिया—"पुत्र! तुम व्यर्थ दुःखित होते हो। भीम मेरी आज्ञा से इस ब्राह्मण का दुःख दूर करने और हमेशा के लिये इस नगर के निवासियों को आपत्ति से छुड़ाने के हेतु इस सत्साहस के काम में प्रवृत्त हुआ है। मैंने यह काम नादानी से नहीं, वरन् खूब सोच-समझ कर किया है। देखो जिस ब्राह्मण के घर में हम लोग सुख-चैन से रहते हैं, विपत्ति के समय उसकी यथाशक्ति रक्षा करना क्षत्रियों का धर्म है। भीमसेन महाबली और साहसी है, उसके विषय में मुझे जरा भी सन्देह नहीं है। मैंने इन सब बातों को भली भाँति सोच-समझ कर उसे राक्षस के पास जाने की सलाह दी है। तुम निश्चिन्त रहो, डर का कोई कारण नहीं है।"

धर्मात्मा युधिष्ठिर ने माता के मुख से धर्मोपदेश सुन कर प्रसन्नतापूर्वक कहा—"माता! तुमने ब्राह्मण का दुःख दूर करने के लिये भीम को जो क्षत्रियोचित सलाह दी है वह तुम्हारे स्वार्थत्याग का उज्ज्वल उदाहरण है। मैं आपकी इस सज्जनता को समझ नहीं सका था। आपके आशीर्वाद से भीमसेन अवश्य ही उस राक्षस को मारकर यश प्राप्त करेगा।"

महाबली भीमसेन गाड़ी में चावल भर, भैंसे का जोड़ हाँकते हुए राक्षस के स्थान पर जा पहुँचा। वहाँ पहुँचकर उन्होंने कई बार राक्षस को पुकारा। जब वह न आया, तब भूख लगने के कारण वह स्वतः ही उस गाड़ी के सामान को खाने लगा। जब वह राक्षस आया और उसने देखा कि हमारा

भोजन हमारे ही भोजन को खा रहा है, तब उसके क्रोध का ठिकाना न रहा। उसने भयंकर गर्जना करके भीम के दोनों कंधों को पकड़ कर जोर-जोर से मुक्के लगाना आरंभ किया। परन्तु भीमसेन ने इस ओर कुछ ध्यान न दिया, वे उसी तरह भोजन करते रहे। जब भीमसेन भरपेट भोजन कर चुके तब उन्होंने अपने मुँह को पोंछकर उसकी ओर लाल-लाल आँखें करके देखा। दोनों में बड़ी देर तक भयंकर युद्ध होता रहा। अन्त में भीम ने उसे जमीन पर गिरा दिया और अपने घुटनों की मार से उसकी हड्डियों को चूर कर दिया। इस तरह उस महाबली दुष्ट राक्षस को मारकर भीमसेन घर आये। भीम को देखते ही युधिष्ठिर ने उसको हृदय से लगा लिया।

देखो, माता कुन्ती ने कैसा स्वार्थ त्याग दिखलाया। वह क्षत्रियधर्म को भली भाँति जानती थीं, दूसरों के दुःख से दुःखी होना और उनकी यथाशक्ति सहायता करना उनके जीवन का व्रत था। कोई व्यक्ति दूसरे के पुत्र की रक्षा के लिए क्या अपने पुत्र की बलि दे सकता है? कदापि नहीं। परन्तु माता कुन्ती ने प्रिय पुत्र भीम को ब्राह्मण के बदले राक्षस के पास भेजकर अपने महान् स्वार्थ त्याग का परिचय दिया। महाबली भीमसेन भी बड़े साहसी और मातृभक्त थे। उन्होंने अपनी माता के उपदेश को मानकर दुष्ट राक्षस का वध करके एकचक्रा-निवासियों को सदैव के लिए एक महान् संकट छुड़ा दिया। उनके सत्साहस को धन्य है।

पाठ १०

झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई

'खूब लड़ी मरदानी वह तो झाँसी वाली रानी थी।' इस एक पंक्ति में ही जैसे रानी लक्ष्मीबाई की वीरता, निडरता और महत्ता छिपी हुई है। सन् १८५७ में अंग्रेजों के विरुद्ध सारे देश में एक भयानक विद्रोह का विस्फोट हुआ था। अंग्रेजों ने विधवा के राज्य पर अपना अधिकार कर लिया था। अंग्रेजों के इस व्यवहार से रानी के मन पर भारी ठेस पहुँची थी और उसने एक स्त्री होते हुए भी अंग्रेजों से लोहा लेने की प्रतिज्ञा की थी। रानी ने अंग्रेजों से युद्ध करने में अपनी तलवार द्वारा बहादुरी और शूरता का जो परिचय दिया वह कभी नहीं भुलाया जा सकता। भारत को परतन्त्रता के बन्धनों से मुक्त कराने वाले अमर शहीदों में रानी लक्ष्मीबाई का नाम चिरकाल तक स्वर्णाक्षरों में अङ्कित रहेगा।

रानी लक्ष्मीबाई का बचपन का नाम मनूबाई था। उनका जन्म एक साधारण परिवार में हुआ था। उनके पिता का नाम मोरोपन्त और माता का नाम भागीरथी बाई था। मोरोपन्त काशी में चिमाजा अप्पा के साथ रहते थे, जाति के ब्राह्मण थे। काशी में रानी लक्ष्मीबाई का जन्म हुआ।

बाजीराव पेशवा उन दिनों बिठूर में रहते थे। सरकार से उन्हें आठ लाख रुपये की पेंशन मिलती थी। चिमाजा अप्पा की मृत्यु हो जाने से मोरोपन्त भी बिठूर चले गये और वहीं अपने पूरे परिवार के साथ रहने लगे। बाजीराव के कोई सन्तान न थी। उन्होंने एक लड़के को गोद ले लिया था,

जिसका नाम नाना साहब था। बालिका मनूबाई नाना के साथ खेलने लगी। नाना साहब बचपन से ही बड़ा साहसी और बहादुर था। बालिका मनूबाई पर बचपन में ही नाना साहब की कई बातों का बड़ा गहरा प्रभाव पड़ा। मनूबाई की पढ़ाई-लिखाई भी नाना साहब के साथ ही साथ हुई।

एक बार मनूबाई का हाथ देखकर एक ज्योतिषी ने भविष्यवाणी की—"यह लड़की बड़ी भाग्यवान है। यह एक दिन अवश्य ही रानी बनेगी।" ज्योतिषी की बात पर उस समय किसी को विश्वास नहीं हुआ। किंतु मनूबाई सचमुच एक दिन रानी क्या महारानी बन गई। बुन्देलखण्ड में झाँसी नामक एक बड़ा सुन्दर राज्य था। पहले वह पेशवाओं के हाथ में था। बाद में उस पर अंग्रेजों ने अपना अधिकार जमा लिया था। किंतु झाँसी की गद्दी पर कोई मरहठा-वंश का ही व्यक्ति बैठाया जाता था। वह नाममात्र का राजा होता था। सन् १८३८ ई० में गंगाधर राव झाँसी की गद्दी पर बैठाये गये। इन्हीं के साथ मनूबाई का विवाह हुआ।

रानी लक्ष्मीबाई के कोई सन्तान नहीं थी। वे अपना अधिकांश समय पूजा-पाठ में व्यतीत किया करती थीं। विवाह के सोलह वर्ष बाद एकाएक उनके माथे से सुहाग का सिन्दूर भी पुछ गया। गंगाधर राव परलोक सिधारे। गंगाधर राव ने अपने अन्तिम समय में अंग्रेजों को एक पत्र लिखा था, जिसमें उन्होंने यह स्पष्ट कर दिया था कि मैंने आनन्द राव को गोद ले लिया है। उनके पत्र पर कोई ध्यान न देकर लार्ड डलहौजी ने झाँसी पर पूर्ण रूप से अपना अधिकार

जमाना चाहा। अन्त में झाँसी अंग्रेजी राज्य में मिला ही ली गई। वहाँ एक फौजी अफसर को प्रबन्ध के लिए भेज दिया गया।

इस घटना से रानी लक्ष्मीबाई के हृदय पर भारी चोट पहुँची। वे भीतर ही भीतर तिलमिला कर रह गईं। उन्होंने बड़ी नम्रतापूर्वक फौजी अफसर से निवेदन किया—'मेरी झाँसी मुझे लौटा दी जाय।' उनकी विनय पर कोई ध्यान नहीं दिया गया। उन्हें एक छोटी-सी रकम पेंशन के रूप में मिलने लगी। छोटी पेंशन से रानी अपने पुराने मान-सम्मान की रक्षा कैसे कर सकती थीं? उन्हें अब इस अपमानित जीवन से घृणा होने लगी। अंग्रेजों के अनाचारों से उनका खून खौल उठा था। किंतु वे क्या कर सकती थीं?

ज्योंही १८५७ में अंग्रेजों के विरुद्ध विद्रोह के बादल सब ओर फट पड़े त्योंही उन्होंने भी आनन्द राव को झाँसी की गद्दी पर आसीन कर, उसके राजा होने की घोषणा कर दी। उन्होंने अंग्रेजों के शत्रुओं से भीतर ही भीतर मेल-जोल बढ़ा लिया और अपनी सेना में बहुत से नये सैनिक भरती कर लिये। इसी समय अंग्रेजों की एक बहुत बड़ी सेना दक्षिण से वहाँ आ पहुँची।

लक्ष्मीबाई ने लड़ाई की पूरी तैयारी कर ली। उन्हें युद्ध के लिये विवश होना पड़ा। वे कवच पहन कर एक हाथ में लपलपाती हुई तलवार और दूसरे में भाला लेकर घोड़े पर सवार हो गईं। इस समय उनका मुख अनोखे तेज से चमचमा रहा था। वे साक्षात् दुर्गा दिखाई देती थीं। रानी को वीर वेष में देखकर उनके सैनिकों का हृदय भी जोश से भरा हुआ था। बड़ा घमासान युद्ध हुआ। अंग्रेजों ने चारों ओर से किले

को घेर लिया। भीषण गोलाबारी होने लगी। रानी लक्ष्मीबाई ने सारी शक्ति लगाकर किले की रक्षा करनी चाही। अंग्रेजों को लेने के देने पड़ गये; किंतु अंत में उन्होंने राजमहल पर अपना अधिकार कर ही लिया। रानी के पास वेष बदलकर भाग जाने के सिवाय कोई दूसरा चारा न था। अंग्रेज रानी को कैद करना चाहे जो जुल्म उन पर ढा सकते थे। रानी को झाँसी छोड़ने का दुःख था किंतु वे हताश नहीं थीं।

रानी लक्ष्मीबाई झाँसी से कालपी आईं। यहाँ भी अंग्रेजों ने उनका पीछा किया। रानी ने बड़ी बहादुरी से यहाँ भी अंग्रेजों से मुठभेड़ ली। अंग्रेजों के पास बड़ी बलवती सेना थी। रानी को भागकर ग्वालियर जाना पड़ा। रानी के साथ उनका दत्तक पुत्र आनंद राव भी था। ग्वालियर में उनका पुत्र शत्रुओं द्वारा मारा गया। पुत्र की मृत्यु से कुछ क्षणों तक रानी के आँखों के सामने अँधेरा छा गया। किंतु वे अपने कलेजे को पत्थर का बनाकर बराबर अंग्रेजों से लड़ाई करती रहीं। रानी जब अंग्रेजों के सामने युद्ध के मैदान में उतरती थीं तब ऐसा लगता था मानो रणचण्डी ही रणभूमि में राक्षसों का वध करने को अवतीर्ण हो गई हैं।

एक दिन लड़ाई समाप्त होने पर जब वे अपने डेरे में लौट रही थीं, तब किसी ने पीछे से उन्हें गोली मार दी; मानो बिजली कौंध कर जमीन में समा गई। एक स्त्री को इस प्रकार कायरता के साथ पीछे से मारने में कौन-सी बहादुरी थी? गोली लगते ही रानी घायल होकर जमीन में गिर पड़ीं। लाश कहीं अंग्रेजों के हाथ न लग जाये, इस भय से वहीं पास में घास की गंजी में वे जला दी गईं। इतनी बड़ी रानी और यह

अन्तिम संस्कार ! भाग्य जो कुछ कराये सो थोड़ा है। जहाँ रानी ने प्राण छोड़े थे, वहाँ आज भी उनकी समाधि बनी हुई है; जहाँ प्रतिवर्ष मेला भरता है।

रानी लक्ष्मीबाई का नाशवान शरीर तो नष्ट हो गया; किन्तु उनका तेज, उनका शौर्य, उनका यश आज भी अमर है। जब तक गंगा-यमुना में पानी रहेगा, तब तक उनकी कीर्ति-पताका भारत में बराबर फहराती रहेगी। इसी प्रकार की वीर नारियों ने हमारे देश का मुख उज्ज्वल किया है।

———

पाठ ११

अमृत शेरगिल

सुधा दिल्ली में चित्र-प्रदर्शिनी देखने गई। वहाँ उसने एक सुन्दर चित्र देखा। उसके नीचे लिखा था "अमृत शेरगिल" सुधा ने अपने पिता से पूछा, "बाबूजी ! यह शेरगिल कौन है ? यह तो बहुत अच्छा चित्र बनाती है।"

"इसका चरित्र बड़ा रोचक है। सुधा ! तुम्हारी रुचि चित्र बनाने की ओर है। इसलिए मैं इसके बारे में जो कुछ जानता हूँ तुम्हें सुनाता हूँ।" पिता ने कहा——अमृत ने जनवरी १९१६ को यूरोप के हंगेरी देश की राजधानी बुडापेस्ट में जन्म लिया था। इसके पिता पंजाबी थे और माता हंगेरी की रहने वाली थी। बचपन में इसे चित्रों का शौक था। जब पाँच वर्ष की थी तभी बागों के पेड़-पौधों के चित्र कागज पर उतारा करती थी। उनमें रंग भी भरा करती थी। एक दिन माँ का ध्यान उसकी ओर गया। वह बड़ी खुश हुई। जब शेरगिल का परिवार भारत आया, तो अमृत की माँ ने एक अंग्रेज चित्रकार को उसे चित्रकला सिखलाने के लिये नियुक्त कर दिया। तीन वर्ष तक उसने उसकी देख-रेख में चित्रकला का अध्ययन किया। अमृत की योग्यता देखकर वह अंग्रेज चित्रकार भी दंग रह गया। उसने अमृत को विदेश भेजने की सलाह दी। सन् १९२४ में शेरगिल का परिवार इटली चला गया। वहाँ अमृत ने 'कलाभवन' में नाम लिखा लिया परन्तु वहाँ उसका मन नहीं लगा। थोड़े समय बाद वह भारत लौट

आई। वहाँ उसने घर पर ही चित्र बनाने का अभ्यास किया। पन्द्रह वर्ष की उम्र में ही वह चित्र बनाने लगी। फिर वह अपने माता-पिता के साथ पेरिस गई। वहाँ वह संसार के मशहूर कलाकार पीरेबेनाँ की शिष्या हो गई। उसने पाँच वर्ष तक पेरिस में चित्रकला की शिक्षा पाई। उसके चित्र योरप की कई कला-प्रदर्शिनियों में रखे गये और उन पर उसे इनाम मिला। उसे फ्रांस की प्रसिद्ध कला-संस्था की सदस्या होने का गौरव भी प्राप्त हुआ। भारत लौटने पर अमृत ने भारतीय चित्रकला की बड़ी उन्नति की। उसको बिलकुल नवीन रूप दे दिया। पाश्चात्य और भारतीय दोनों कलाओं का मेल किया। उसे पहाड़ी दृश्य बहुत भाते थे। उनको बड़ी चतुराई से कागज पर खींचती थी। उसके कुछ चित्रों के नाम हैं 'नारी' 'नवयुवतियाँ' 'तीन बहिनें' 'पनिहारिन' और 'वधू शृंगार।'

सन् १९३२ में अमृत का विक्टरएगन से विवाह हुआ। वह बड़े मीठे स्वभाव की स्त्री थी। सबसे हँसकर मिलती और बातें करती थी। गरीबों से मिलकर उसे बहुत सुख मिलता था। यदि वे उसके चित्रों की तारीफ कर देते तो वह फूली नहीं समाती थी। एक बार शिमले में कला-प्रदर्शिनी वालों ने उसे इनाम देना चाहा। पर उसने इनाम लेने से इन्कार कर दिया। इसलिये नहीं कि उसे घमंड हो गया था। बात यह थी कि प्रदर्शिनी वालों ने उसके ऐसे चित्र नापास कर दिये थे जिन्हें वह ऊँचे दर्जे की समझती थी और विदेशों में उसे तमगे मिल चुके थे। उसने कहा, "जिन्हें चित्र परखने की योग्यता नहीं उनसे इनाम क्या लेना ?"

५ सितम्बर १९४१ के समाचारपत्रों में यह समाचार बड़े-बड़े अक्षरों में छपा था, "लाहौर में अमृत शेरगिल की मृत्यु हो गई। मृत्यु के समय उसकी उम्र २९ वर्ष से अधिक न थी। संसार की स्त्री चित्रकार के नाते उसका स्थान बहुत ऊँचा था। उसकी मृत्यु से भारतीय चित्रकला की बड़ी भारी हानि हुई।"

सुधा ने अपने पिता से अमृत का चरित्र सुनकर एक लम्बी साँस ली और आँखें पोछ लीं।

———